International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2017; Page No. 46-50

सन्त बेनामी जी की साधना–पद्धति

[*1] सतीश कुमार, [2] बसन्ती

[1] काशी हिंदू विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वारानाशी, उत्तर प्रदेश, भारत।
[2] हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा, भारत।

1. प्रस्तावना

साधना–पद्धति का स्वरूपगत अर्थ

"साधना प्रधानतः या तो ज्ञान का आधार लेकर चलती है अथवा भक्ति का आश्रय लेकर की जाती है वा उसे सम्पन्न करने के लिए हमें विविध कर्मों का उपक्रम करना तथा उन्हें निश्चित नियमों के साथ अनुष्ठित करना पड़ता है। ज्ञानमयी साधना बहुधा तर्क या अवलम्बन ग्रहण करती है और उसके साथ व्यवस्थित ढंग से अग्रसर होती हुई किसी अंतिम ध्येय तक पहुँचने के लिए सचेष्ठ होती है। परन्तु भक्ति की साधना में तर्क–वितर्क की जगह श्रद्धा या विश्वास के भाव काम करते हैं और साधक को अपने उद्देश्य के प्रति दृढ़ आस्था रखने के लिए प्रेरित किया करते हैं।"[1]

उक्त परिभाषा के आलोक में साधना के विषय में यह कहा जा सकता है कि किसी प्रधान उद्देश्य को ध्यान में रखकर उसके निमित्त आवश्यक यत्न करने को 'साधना' की संज्ञा दी जाती है। उसका मूल लक्ष्य साध्य वस्तु या फिर कोई ऐहिक सुख होता है अथवा पारलौकिक आनन्द की प्राप्ति साधना का उद्देश्य हो सकता है। इन्हीं उद्देश्यों की सिद्धि के अस्तित्व में विश्वास रखकर साधक उसके लिए प्रवृत्त होता है। वह अतुल सम्पत्ति, मनोवांछित ऐश्वर्य, स्वस्थ शरीर एवं सुखी परिवार की अभिलाषा से युक्त रहता है। पारलौकिक आनन्द भी उसी प्रकार एक आदर्श स्थिति होती है, जिसे प्रत्येक श्रद्धालु व्यक्ति अपने जीवन का अंत हो जाने पर प्राप्त करना चाहता है। वैसे तो हमारे दैनिक जीवन में बहुत सारी बातें होती हैं, जिनके निमित्त मनुष्य कठोर कार्य करता है, परन्तु इन सभी को साधना नहीं माना जा सकता। साधना कहलाने योग्य कार्य अधिकतर वे ही होते हैं, जो आध्यात्मिक उन्नति के निमित्त किए जाते हैं। साधना के क्षेत्र में भारतीय मतानुसार योग, कर्म, भक्ति, प्रेम एवं उपासना आदि पद्धतियाँ प्रचलन में मानी जाती हैं। साधना की इन सभी विधियों द्वारा जीव (मनुष्य) नित्यानंद एवं जीवन मुक्ति अर्थात् ईश्वर का सानिध्य एवं जीवन–मरण के चक्र से मुक्ति पाना चाहता है। प्रायः सभी संतों की (बेनामी सहित) साधना मनःसाधना मानी गई है, क्योंकि मनःसाधना ही एकमात्र ऐसी साधना है, जिसके द्वारा मन को विषयों से विमुख करके सांसारिक प्रलोभनों से निवृत्त किया जा सकता है क्योंकि सांसारिक सुखोपभोगों का महत्व संतों के लिए नगण्य है। सभी प्रकार के सुखोपभोगों का केन्द्र मनुष्य का मन है। इसलिए मन; साधना द्वारा मन की चंचलता पर अंकुश लगाना परमावश्यक है। तत्पश्चात् ही साधना के अग्रगामी सोपानों का साक्षात् जीव कर पाता है। यदि जीव का मन ही नियंत्रण में नहीं है, तो किसी भी प्रकार की साधना के विषय में विचार करना भी प्रपंच ही कहलाएगा। बेनामी जी ने मन को ही ब्रह्म स्वीकार किया है। इनका मानना है कि जब मन की सभी कुटिलताएं एवं विकृत्तियां नष्ट हो जाती हैं, तो ऐसा मन ब्रह्म का ही पर्याय बन जाता है। इनका कथन हैः–

> ''कहें गुरु सुन शिष्य तू, बोली ही हो फेर।
> मन को ब्रह्म विचार ले, जरे कर्म का ढ़ेर।।''[2]

यहाँ 'कर्म का ढ़ेर' कहने से तात्पर्य कुटिल एवं विकृत्त कृत्यों का नाश करना ही है। तत्पश्चात् ही मन विकृत्ति शून्य होकर ब्रह्ममय हो पाता है।

2. बेनामी जी की साधना–पद्धति का स्वरूप

संत बेनामी जी की साधना एक उच्च कोटि के साधक की सच्ची साधना है, इसमें पारलौकिक एवं परमानंद की आकांक्षा की ललक स्पष्ट दृष्टिगोचर है। इनकी इस परमानन्दमयी साधना के समक्ष सांसारिक तुच्छ आनन्द क्षणभर भी नहीं ठहर पाए हैं। ब्रह्म प्राप्ति के मूल में भी परमानन्द की अनुभूति बेनामी जी करते हैं। इनके सभी यत्न, प्रयत्न प्रायः ब्रह्म की प्राप्ति हेतु समर्पित रहे हैं। इनकी धारणा रही है कि सतगुरु की असीम कृपा रुपी गुरूमंत्र से साधना का यह अति दुर्गम मार्ग भी सहज एवं सरल हो जाता है। इसी के परिणामस्वरूप अंत में साधक अपने प्रयासों में सफल होता है और उसे अपना मनोवांछित फल इस रूप में प्राप्त हो जाता हैः–

> ''कक्कर योगी आदि ब्रह्म ये, आदि ब्रह्म पहिचाना।
> ब्रह्म बीज कक्कर ते आया, गुरु सुख संत पिछाना।।''[3]

बेनामी जी की साधना मंत्रयोग (नाम स्मरण) से प्रारम्भ होकर शब्द सूरत योग तथा हठयोग भी कठोर साधना तक जा पहुँची है। अपनी साधना के अवलम्बन स्वरूप बेनामी जी ने कबीर के निर्गुण भक्ति मार्ग के साधक को अपना अवलम्ब स्वीकार किया है। कबीर का ईश्वर निर्गुण–निराकार है, उसी प्रकार इनका ब्रह्म भी बेनामी अर्थात् 'बिना नाम का' बनकर सामने आता है, जिसे निर्गुण का पर्याय मान लेने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इनका यह बेनामी ब्रह्म अद्वैतवाद की पराकाष्ठा का पर्याय रहा है। इनका निम्न कथन भी इनके इस भाव की पुष्टि ही करता है। ये लिखते हैंः–

> ''सब ग्रंथन को सार है, सबको मथकर देख।
> एक ब्रह्म व्यापक सकल, द्वैत भाव मत लेख।।''[4]

ये मानते हैं कि जीव, जब साधना के कठोर मार्ग पर चल पड़ता है, तो इस मार्ग पर चलते ही जीव का सम्पूर्ण अज्ञान लुप्त हो जाता है। उसका मार्ग ज्ञान के प्रकाश की लौ से आलोकित हो उठता है और अन्तोत्तगत्वा जीव ब्रह्ममय हो जाता है। इसी का नाम परमानंदमयी साधना स्वीकार किया गया है। मंत्रयोग से प्रारम्भ होने वाली यह साधना अपने चरम तक कैसे पहुंच पाई है, इसे इनके शब्दों द्वारा बड़े ही सहज ढंग से हृदयगंम किया जा सकता है। इन्होंने अपनी भावोक्ति को कुछ यूं अभिव्यक्ति प्रदान की हैः–

> ''गुदा नेत्र को ढ़क लिया, ढ़के कान के साल।
> रसनाते सुर खैंच कै, ब्रह्मंरन्ध्र रूध्र को चाल।।
> प्राण पवन के मेल ते, भँवर गुफा के बीच।
> अनहद के बाजे बजे, ये हँसन की रीत।।
> ज्योत झिलमली खुदरती, तख्त ज्योति के बीच।
> बेनामी बैठक करें, सतगुरु की बकसीस।।''[5]

बेनामी जी ने अपनी साधना में ज्ञान योग को एक परमावश्यक तत्व के रूप में स्वीकार किया है। इनका मानना है कि जब तक जीव ज्ञान को प्राप्त नहीं लेता तब तक मन की साधना पूर्ण नहीं हो सकती है। अपनी साधना के इस क्रम में इन्होंने भक्ति योग को भी पर्याप्त महत्व प्रदान किया है। यदि ध्यान से परखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्यान, नाम–स्मरण, भक्ति आदि सभी साधना के ही हेतु हैं। ये साधना से पृथक् नहीं आंके जाते। बेनामी जी भी मानते हैं कि भक्ति और साधना भिन्न–भिन्न नहीं हैं। इन्हें पृथक करना और पृथक् कहना सहज नहीं है। भक्ति और साधना दोनों ही मोक्ष प्राप्ति का आवश्यक एवं सर्वसुलभ मार्ग हैं। ये कहते हैंः–

''कृपा करो गुरु देव जी, छूटे सारे रोग।
गुरु बोले औषध सुनो, करो तुम भक्ति योग।।''[6]

3. बेनामी जी की साधना–पद्धति के विविध पक्ष

साधना–पद्धति के विविध पहलुओं से तात्पर्य कवि द्वारा अपनाए गए मार्ग से है अर्थात् भक्ति के किन–किन मार्गों पर चलकर इन्होंने अपने वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने का यत्न किया? संत बेनामी जी से पूर्व संत कबीर जैसे भक्ति साधकों ने अपने लिए साधना पथ निर्मित कर लिया था। तात्पर्य यह है कि इनके सामने कबीर सरीखे संतों के आदर्श प्रस्तुत थे। इस पर भी इन्होंने अपनी साधना–पद्धति का जो स्वरूप अपनाया, वह निर्गुण–मार्गीय होकर भी लीक से हटा हुआ है। लीक से पृथक् होने का अर्थ है, इनका लचीलापन। इनकी साधना में सगुण–निर्गुण दोनों का अद्‌भुत् समन्वय है। इसी समन्वय के कारण इनकी साधना–पद्धति व्यापक रूप में बढ़ती चली गई है। इनकी साधना में कर्म–साधना, ज्ञान–साधना, योग–साधना एवं प्रेम–साधना के तत्वों को स्थान–स्थान पर देखा जा सकता है।
विद्वानों ने साधना के चार भेद किए हैं। इनमें प्रमुखतः कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति स्वीकार किए गए हैं। इनकी साधना–पद्धति भी इन चारों तत्वों का आश्रय ग्रहण कर अपने पथ पर अग्रसर हुई है। सर्वप्रथम कर्म–साधना पर विचार करना आवश्यक है।

4. कर्म–साधना

'कर्म' शब्द 'कृ' धातु से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'करना' है। किन्तु इन दो अक्षरों में विशाल अर्थ छिपा हुआ है। इसके अन्तर्गत व्यष्टि तथा समष्टि की सभी क्रियाएं रखी जा सकती हैं। व्यष्टि कर्म के अन्तर्गत मानव के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी कर्म हैं। तात्विक दृष्टि से जो कर्म किए जाते हैं, वे सभी आध्यात्मिक कर्म के अन्तर्गत आते हैं। ये अत्यंत व्यापक हैं। महान् पुरुषों की आध्यात्मिक साधना इसी के अन्तर्गत आती है।''[7]
जहाँ तक इनकी कर्म–साधना का प्रश्न है तो इसके अन्तर्गत यह स्पष्ट कर देना परमावश्यक है कि इनके कर्म निष्काम कर्म की कोटि के अन्तर्गत आते हैं। क्योंकि निष्काम कर्म ही साधक की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। निष्काम कम–साधना का एक उत्तम नमूना बेनामी जी की वाणी में ही देखा जा सकता हैः–

''निष्काम मोक्ष का साधन है, ये शुद्ध भावना करता है।
हो शुद्ध भावना जिस नर की, वह भवसिंधु उतरता है।''[8]

अतः यह तथ्य स्पष्टतः सामने आ चुका है कि इनकी साधना निष्काम कर्म की पुनीत साधना है।

5. ज्ञान–साधना

जहाँ तक ज्ञान–साधना का प्रश्न है, तो यह पूर्णरूपेण विदित तथ्य है कि समस्त संत साहित्य ज्ञान के आलोक से देदिप्यमान है। संत बेनामी भी इस तथ्य से पृथक् नहीं हैं। इनकी साहित्य–साधना एवं भक्ति–साधना ज्ञान के पवित्र मार्ग पर चलकर ही अपने लक्ष्य तक पहुँच पाई है। इसका प्रमाण इपके ग्रंथ 'आत्म–बोध' में पग–पग पर दृष्टिगोचर है। यह ज्ञान–साधना ही है जो सांसारिक ज्ञान से प्रारम्भ होकर ब्रह्म ज्ञान का पर्याय बन जाती है। ज्ञान–साधना के कारण ही जीवात्मा के हृदयस्थ अहंकार का नाश संभव है। सृष्टि के कण–कण में उसी (परमात्मा) की अनुभूति अर्थात् अनेकत्व में एकत्व का दर्शन करना ज्ञान–साधना ही है और अन्ततः पूर्णतः ब्रह्ममय हो जाना इस ज्ञान–साधना की पराकाष्ठा मानी जाती है। सांसारिक ज्ञान और आत्मज्ञान प्रायः दो तरह के ज्ञान ही संत साहित्य का वर्ण्य–विषय रहे हैं। सांसारिक ज्ञान को प्रायः मिथ्या ज्ञान कहकर पुकारा गया है, क्योंकि कभी–कभी यह जीव को अंहकारी तक बना देता है और ईश्वर से विमुख कर देता है। दूसरी तरफ आत्म–ज्ञान की चर्चा संतों ने अपेक्षाकृत विशद रूप में की है। कबीरादि संतों ने आत्मज्ञान पर पर्याप्त बल दिया है। जहाँ तक संत बेनामी की आत्मज्ञान विषयक् साधना का प्रश्न है तो मैं यही कहना उचित समझता हूँ कि कबीर की भांति ही बेनामी जी ने आत्मज्ञान का पर्याप्त महत्त्व स्वीकार किया है। इनकी साधना में भक्ति मूलतः समाई हुई है। इनका ब्रह्म प्रेम इनकी भक्ति योग–साधना का मूल है। इनकी साधना का स्वरूप इतना व्यापक है कि इसे उपर्युक्त अध्ययन के अधीन नहीं किया जा सकता। मूलतः इसमें सत्संगति नाम स्मरण, ध्यान, भजन–कीर्तन एवं योग आदि का अद्‌भुत मिश्रण दृष्टिगत है। इनका दृढ़ विश्वास है कि जब तक जीव संसार की भीड़ में विषयी जीवन का उपभोगी बना रहता है, तब तक वह साधना से विमुख एक दुर्जन के समान पृथ्वी का बोझ ही बना रहता है। इनकी धारणा है कि साधना इत्यादि के पथ पर चलकर ही ब्रह्म प्राप्ति का स्वप्न साकार हो सकता है। इनका मानना है कि मानव शरीर धारण करके भी यदि ब्रह्म से मिलन नहीं हुआ तो समझो यह जीवन व्यर्थ ही गंवा दिया। साधना के द्वारा ही मनुष्य का जीवन ब्रह्ममय हो सकता है, दूसरा कोई और उपाय नहीं है। वे लिखते हैंः–

''जब लग दम नाभी बसे, तब लग खलग जहान।
जब नभ में दम लय हुई, हो गया ब्रह्म समान।।''[9]

आत्मज्ञानपरक एक उक्ति इनकी वाणी में ही प्रस्तुत हैः–

''जहाँ बसेरा बाज का, पंछी रहे न और।
ब्रह्म ज्ञान जा घट बसे, नहीं काम का ठौर।।
सिंहन के लहड़ै नहीं, ना दूजे को साथ।
आत्म ज्ञान बिके नहीं, साधु रहे न साथ।।''[10]

अतः यह स्पष्टतः उद्‌घोषित किया जा सकता है कि इनकी ज्ञान–साधना में आत्मज्ञान–साधना को संत प्रवृत्ति के वांछित ही स्थान प्राप्त हुआ है। इस आत्मज्ञान परक साधना को इन्होंने उस मुकाम तक पहंचा दिया है, जहाँ से ये ईश्वर का साक्षात् परमानंद से करते हैं। इस परमानन्द की अनुभूति ही एक सच्चे साधक का ध्येय होता है। अतः बेनामी जी अपनी ज्ञानपरक साधना में पूर्णतः सफल रहे हैं।

6. योग–साधना

निर्गुण–पंथीय ज्ञान मार्गी साधना में सभी संतों ने योग मार्ग को स्वीकार किया है। इन्होनें हठयोग, शब्दयोग, मंत्रयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग एवं कर्मयोग आदि सभी योग पद्धतियों को स्वीकार किया है। संत बेनामी जी की योग–साधना के साक्ष्य उनके ग्रंथ में समाहित हैं। यह योग–साधना उन्हें अंत में मुक्ति धाम का आश्रय दिलाती है।

6.1 योग का अर्थ

'योग' शब्द 'युज' धातु से बना है। 'युज' का अर्थ है, मुक्त हो जाना, जड़ जाना, जोड़, मेल–मिलाप, एकता, एकत्र अवस्थिति इत्यादि। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है – 'युज्यते

समार्थाविमीयते मनः अनेन इति योगः।[11] लिंग पुराण में कहा गया है – ''योगो निरोधेस्य जीव ब्रह्मात्मनोः परः।'[12] आदित्य पुराण में योग की परिभाषा इस प्रकार दी गई है – 'योगात् संजायते ज्ञानं योगोमन्मेक चित्ततः।'[13] ''हरिभद्र सूरि ने मोक्ष से जोड़ने वाले को योग कहा है।''[14]

धवला पुस्तक में कहा गया है – ''जो सम्बन्ध अथवा संयोग को प्राप्त हो उसको योग कहते हैं। योग का अर्थ समाधि और ज्ञान भी होता है।''[15]

बेनामी जी की योग–साधना मुक्ति के मार्गीय साधक की सच्ची साधना है, जो भक्ति के भिन्न–भिन्न सोपानों से होती हुई योग मार्ग तक आ पहुँची है। इनकी योग–साधना में योग के चारों भेद–मंत्र योग, हठयोग, लययोग एवं राजयोग स्वभावतः उपलब्ध होते हैं। इनका कथन हैः–

''धसकाया में ध्यान करो, शून्य में समाधि लगया।
लीन हो सायुज्जय में, ज्योति में ज्योति समाय।।''[16]

इस प्रकार के अनेकों पद इनके आत्म–बोध में उपलब्ध हैं, जो इन्हें एक उच्च कोटि का भक्त एवं योगी सिद्ध करते हैं।

6.2 भक्ति–साधना

संतों की सभी प्रकार की साधनाओं का मूल भक्ति ही रही है। संतों ने अपने आराध्य को अलख, निरंजन, राम, शब्द आदि नामों से ग्रहण किया है। तत्पश्चात् 'नाम' का आश्रय लेकर ही इन्होंने अपनी भक्ति को चरमबिंदु तक पहुँचा दिया है। संत परम्परा में श्री बेनामी जी की भक्ति–साधना उच्च कोटि की साधना कही जा सकती है। ईश्वर के प्रति इनकी सच्ची श्रद्धा एवं लग्न इन्हें भक्ति के पथ पर निरंतर अग्रसर करती रही है। इनकी भक्ति–भावना ने मंत्रयोग से हठयोग की कठोर साधना तक का सफर तय किया है। ईश्वर स्मरण में दत्तचित होकर ये अपने अजपा का जाप करने लगते हैं। अपने अलख, निरंजन की भक्ति–साधना बेनामी जी किस प्रकार करते हैं, यह उनकी ही वाणी में द्रष्टव्य हैः–

''आला की धुन बेनामी जोगी ने कह दई, भैया ये समझान की बात।
सुरत सुमरनी जोगी ने धरली जाकी अजपा अजब की बात।।
अलख–अलख जोगी की अजपा करे जो तो अलख निरंजन आप।
संतोष तख्त पै जोगी ने आसन कियो जाके शील सरोही सापा।''[17]

7. बेनामी जी की सहज–साधना

डॉ. बड़थ्वाल ने लिखा है – ''वह योग जिसके द्वारा सुरति एवं शब्द का संयोग सिद्ध होता है, और सभी सीमाएं शब्द में फिर से लीन हो जाती हैं, शब्द योग अथवा सुरति योग कहलाता है और अंत में स्वयं शब्द रूप ब्रह्म हो जाता है।''[18] ''शब्द ब्रह्म की धारणा अत्यंत प्राचीन है। वेदों में अनेक स्थलों पर शब्द ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है।''[19] ''भागवत पुराण में भी शब्द ब्रह्म की अलौकिक महिमा का वर्णन मिलता है।''[20] ''स्वामी शंकराचार्य ने भी शब्द की महिमा को स्वीकार किया है।''[21] गोरखनाथ का तो कथन हैः–

''ओम् सबदहिं ताला सबदहिं कूचि सबदहिं सबद भया उजियाला।
कांटा सेता कांटा षूटै, कंची सेती ताला।
सिंध मिलै तो साधिक निषिजै, जब घटि होय उजाला।।''[22]

गुरु गोरखनाथ तथा विद्धानों नें 'शब्द' को ब्रह्म का पर्याय माना है, कुछ इसी प्रकार की मान्यता बेनामी जी की भी प्रतीत होती है। इनका 'शब्द' भी ब्रह्म का ही पर्याय बन गया है। यह शब्द ही ब्रह्म बनकर जीव को अनहद की वांछित अवस्था तक पहुँचा देता है। स्वयं बेनामी जी का भी ऐसा ही कथन है। वे लिखते हैंः–

''सुरत शब्द निश्चय करो, जब आतम सुध होय।
चार तत्त न्यारे करे, अनहद की धुन होय।।''[23]

शब्द में ध्यानमग्न हो जाना शब्द सूरत योग की अवस्था मानी जाती है। शब्द सूरत योग साधना–पद्धति का अनिवार्य तत्त्व बनकर सामने आया है। शब्द सूरत की इस साधना में बेनामी जी ने 'ओम्' को भी पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया है। यह ओमकार ब्रह्म का द्योतक एवं जीवात्मा की मुक्ति का साधन है। इन्होंने लिखा हैः–

''जै तोको अब ब्राह्मण होना, सतगुरु ने यों फरमाई।
ऊँकार का सुमरण करले, प्राणायाम साधो भाई।।
तीन गुणन को करो इक्टठे, एक ऊँकार रहो भाई।
पाँच तत्त्व का बना पुतला, जामे ऊँकार है भाई।।''[24]

'शब्द' यदि ओमकार एवं ब्रह्म का पर्याय है, तो सूरति मनुष्य की चेतना का नाम है अर्थात् सहज भाव से ब्रह्म की साधना में लीन रहना ही शब्द सूरत योग है। पण्डित परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है –''सूरति हमारे जीव का वह निर्मल रूप है, जिसमें हमारे मूल सत्य का प्रतिबिम्ब बराबर झलकता है।''[25] डॉ. त्रिगुणायत के अनुसार, ''वास्तव में सूरति को बहिर्मुखी आत्मा कह सकते हैं अन्तर्मुखी प्रवृत्ति नहीं। क्योंकि अपने शब्द सूरत योग में बहिर्मुखी आत्मा को शून्यरूपी शब्द में लीन करने का उपदेश दिया है। यदि सूरति का अर्थ अन्तर्मुखी वृत्ति होता तो वे अपनी साधना में सुरति को अन्तर्मुखी करने का आदेश नहीं देते।''[26] ईश्वर के प्रति निरंतर चेतना दृष्टि सुरति का स्वरूप धारण करती चली गई है। यह योग–साधना ईश्वर के साक्षात् पर ही सम्पन्न होती है। वे कहते हैंः–

''सुरति स्वास लगाय, मूल के बन्ध लगाय के।
दोनों नैंन मिलाय, सुरत शब्द भेलै करो।।
सहजे सुरत समाय, गुप्त ध्यान उर में धरो।''[27]

साधना की जिस पद्धति को बेनामी जी ने ग्रहण किया, वह हठयोग साधना का सहज रूप है। साधना मार्ग पर मनुष्य तभी चल पाता है जब उसका मन विषय–वासनाओं के मोह जाल को तोड़ सके। बेनामी जी एक पूर्ण योगी पुरुष थे। इन्होंने अपनी साधना को आगे बढ़ाने हेतु सांसारिक एंव विषयी जीवन का पूर्णतः परित्याग कर दिया। बेनामी जी भी साधना मार्ग पर तभी चल सके, जब उन्होंने विषयी जीवन का पूर्ण परित्याग किया। इस प्रकार वैराग्य को अपनाकर बेनामी जी अपनी साधना के मार्ग पर निरंतर बढ़ते चले गए। इस मार्ग पर चलते–चलते बेनामी जी अपनी सुरतावस्था में पहुँचे। सुरत मनुष्य की चेतना का पर्याय है। कहने का तात्पर्य यह है कि श्री बेनामी जी सुरत अथवा ध्यान की अवस्था में पहुँचकर 'शब्द' अथवा ब्रह्म की साधना में लीन हो गए। सुरति की इस अवस्था में बेनामी जी सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त होकर ब्रह्ममय हो गए। इनके अनेक पदों में उनकी इस अवस्था का चित्रण हुआ है। वे लिखते हैंः–

''सुरत शब्द निश्चय करो, जब आतम सुध होय।
चार तत न्यारे करे, अनहद की धुन होय।।
कागद पै नहीं करोड़ा, अक्षर पै नहीं ज्ञान।
शब्द विचार सुरत ते, आपा ब्रह्म समान।।''[28]

अर्थात् अपनी चेतना को पूर्णतः ब्रह्म पर केन्द्रित करके ही इन्होंने अपनी साधना को आगे बढ़ाया। इस प्रकार बेनामी जी की यह साधना अपनी साधना–पद्धति के अनेक मार्गों से होकर शब्द सुरत की अवस्था तक पहुँच पाई है। ये कहते हैं कि ब्रह्म का निवास तो प्रत्येक मनुष्य के घट के भीतर ही होता है, परन्तु जीव (मनुष्य) अपनी अज्ञानता के कारण उसे पहचान नहीं पाता। जीव उसे कैसे पहचान सकता है, इसकी ओर संकेत करते हुए इन्होंने लिखा हैः–

''बेनामी घट–घट बसे, व्योम तत्त्व निर्धार।
प्राण पवन को बस करे, तब पावे कछु पार।।''[29]

यहाँ पर प्राण, पवन का उल्लेख करके इन्होने अपनी हठयोग साधना की ओर ही संकेत किया है। अतः प्राण, पवन को नियंत्रित करके ही अभिष्ट मार्ग पर आगे बढ़ा जा सकता है। इन्होंने अपनी साधना में इड़ा–पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ियों का भी उल्लेख किया है। निर्गुण मार्गीय संतों ने हठयोग पर आधारित साधना–पद्धति के अनुसार ही इड़ा–पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों का प्रयोग किया है। इसी योग–साधना के परिणामस्वरूप इन्होंने भी इसी साधना–पद्धति को अपनाया है। इड़ा–पिंगला का उल्लेख करते हुए ये लिखते हैंः–

''ये इड़ा पिंगला फेर बदल घट मांही।
यह काया कासी खोज मिलैगा सांई।।''[30]

यहाँ इनकी साधनास्थ उस अवस्था का बोध होता है, जब साधक शब्द की साधना में पूर्णतः समर्पित हो जाता है। इनका मानना है कि इड़ा–पिंगला नाड़ियों को जाग्रतावस्था में लाकर उन्हें सुषुम्ना में मिलाया जाता है, तभी इस देह रूपी काशी में शब्द (ब्रह्म) रूपी शिव की दिव्यानुभूति की जा सकती है। इन्होंने सुरतावस्था की स्थिति में इन तीनों नाड़ियों के महत्व को प्रमुख माना है। ये कहते हैं जब ये दोनों नाड़ियाँ तीसरी अथवा सुषुम्ना में जाकर मिल जाती है, तभी अनहद की ध्वनि जीव को सुनाई पड़ती है। इनका कथन हैः–

''इड़ा पिंगला शोच समझकर सुषुमन में चल बासा कर।
अजपा जाप जपै निशि वासर, अनहद की धुन सुनकर तर।।''[31]

इन्होंने सुरत योग हेतु यह स्पष्ट किया है कि रात–दिन उस अजपा का जाप एवं योग–साधना का संयोग जब इन दोनों का मेल हो जाता है, तो अनहद की ध्वनि सुनाई देने लग जाती है। परन्तु इससे पूर्व कुण्डलिनी तक पहुँचा जाना अनिवार्य है। कुण्डलिनी तक जाने का उल्लेख भी इन्होंने किया है। ये कहते हैंः–

''औंधा पुष्प पड़ा घट भीतर, धस के इसको सीधा कर।
फेर पुष्प को कर हृदय पै, नारायण का दर्शन कर।।''[32]

औंधा पुष्प जोकि औंधे कुंए का प्रतीक है। इसी के साथ–साथ इन्होंने अपनी शब्द साधना में कुण्डलिनी को ऊपर चढानें की स्थिति का भी संकेत किया है। इन्होंने संकेत किया है कि कुण्डलिनी के ऊपर चढ़ने की अवस्था में साधु गुणातीत महात्मा बन जाता है और शब्द की साधना की यह अन्तिम सुरतावस्था है। ब्रह्मरन्ध्र के आगे की अवस्था को तुरीयावस्था कहा जाता है। इन्होंने अपने पदों में तुरीयावस्था का भी उल्लेख किया है। वे कहते हैंः–

''गुदा नेत्र को ढ़क लिया, ढ़के कान के साल।
रसना ते सुर खैंच के, ब्रह्मरन्ध्र को चाल।।''[34]

इनकी सुरतावस्था शब्द की अनुभूति तक पहुँचने ही वाली है। यहाँ पर पहुँचकर इनको साधना के चरम लक्ष्य की प्रतीति होने लगती है। अब इनको शून्य शिखर की अनुभूति होने लगती है। शून्य की अवस्था में ही अनहदनाद की दिव्य एवं चमत्कारी ध्वनि सुनाई देने लग जाती है। ये कहते हैंः–

''प्राण पवन के मेल ते, भंवर गुफा के बीच।
अनहद के बाजे बजैं, ये हंसन की रीत।।''[35]

अब इन्हें अनहदनाद की ध्वनि सुनाई देने लगी है। इस स्थिति में ब्रह्म जोकि ज्योतिस्वरूप है, की ज्योति झिलमिलाती हुई प्रतीत होने लगती है। इस अनुभूति का चित्रण करते हुए ये लिखते हैंः–

''ज्योत झिलमली खुदरती देखो मस्तक मांहि।
कोई कोई साधू चढ़ गये, समता मांहि समांहि।।''[36]

इन्होंने बताया है कि इस दिव्य ज्योति का अनुभव किसी विरले साधु को ही हो पाता है। अब इन्हें शब्द की दिव्य अनुभूति हो जाती है। इसके पश्चात् उस दिव्य लोक अर्थात् ब्रह्मलोक में कैसी अनुभूति होती है, उस अनुभूति का चित्रण भी इन्होंने किया है। ये लिखते हैंः–

''आकाश की सैल अजब दरिया, फरके निशान सरारे में।
जहाँ बेनामी दुरवेश खड़े, एक शून्य शिखर के तारे में।।''[37]

यहाँ पहुँचकर इनकी शब्द (ब्रह्म) की साधना का सफर सम्पन्न होता है। इनकी सुरत की अवस्था यहाँ पहुँचकर पूर्णरूपेण सुसम्पन्न हो जाती है। यहाँ पर इन्हें ब्रह्म की अनुभूति मात्र नहीं होती अपितु ये यहाँ पर दिव्य होली खेलने लग जाते हैं। इनका कथन हैः–

''शुन्य शिखर में अजब झरोखा, श्वेत धजा फरकैरी ननदिया।
बेनामी ऐसी होरी खेलै, अब कुछ कहीं न परैरी ननदिया।।''[38]

इस प्रकार बेनामी जी की सहज–साधना ब्रह्म की अद्‌भुत अनुभूति पाकर ही विराम लेती है। ब्रह्म मिलन हो जाने के बाद की अवस्था एवं अनुभवों का उल्लेख करते हुए ये लिखते हैंः–

''तख्त बिछायो चाँदन चौक में, जहाँ अनहद की है झनकार।
ज्योत कुदरती जहाँ झिलमिली, असंख्य सूर्य जहाँ करे प्रकाश।।''[39]

इन्होंने लिखा है कि ठाकुर (ब्रह्म) को सिंहासन में अनेक रत्न जड़े हुए हैं। उस सिहांसन पर बैठकर ठाकुर कहने लगे कि अब उस पवित्र आत्मा बेनामी जी को उसके निकट लाकर बैठा दो जिससे यह बैकुण्ठ पवित्र हो जाएः–

''रत्न जटित सिहांसन आ गयो, जाको धोरे लियो बिछाय।
अब ले आओ बेनामी संत को, जासे बैकुण्ठ पवित्र हो जाय।।''[40]

इनकी शब्द साधना इनको ही नहीं अपितु बैकुण्ठ को भी पवित्र कर देती है। इस प्रकार अब मैं यह कह सकता हूँ कि इनकी सहज–साधना कबीर आदि ज्ञानमार्गी निर्गुण संतों की ही ध्यान, योग–साधना, शब्द सुरत योग आदि के सोपानों से गुजरती हुई शब्द की अनुभूति एवं उसमे एकाकार होने तक की अवस्था पर आकर सम्पन्न होती है।

8. बेनामी जी की साधना का चरमोत्कर्ष लक्ष्य

लक्ष्य अथवा उद्‌देश्य के अभाव में कोई भी कर्म सम्पन्न नहीं हो सकता है। मनुष्य जब किसी कार्य में प्रवृत्त होता है, तो उसका कोई न कोई लक्ष्य अवश्य ही रहता है। इसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मनुष्य कठोर से कठोर कार्य भी कर डालता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी शारीरिक, एवं मानसिकता क्षमता के अनुरूप ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर पाता। यही नहीं, सभी के लक्ष्य भी भिन्न ही होते हैं, परन्तु जहाँ तक इनकी साधना का प्रश्न है। इन्होंने अपनी साधना के द्वारा ईश्वर प्राप्ति को ही अपना लक्ष्य बनाया है। साधना का कोई एक रूप नहीं होता। यह भिन्न–भिन्न ढंग से भी की जा सकती है। इनकी साधना के भी अनेक रूप हैं। कहीं यह सहज–साधना के रूप में हमारे सामने आई हैं, तो कहीं कठोर साधना के रूप में। यह किसी भी रूप में सामने आई हो, परन्तु इसका लक्ष्य एक ही है – मोक्ष प्राप्ति, ईश्वर साक्षात्कार आदि द्वारा परमपद का अधिकारी बनना। दूसरे शब्दों में, कह सकते हैं कि आत्मा का परमात्मा में मिलन एवं जन्म एवं मृत्यु के बंधन से मुक्ति। जब हम इनके साहित्य पर दृष्टिपात करते हैं तो ज्ञात होता है कि श्री बेनामी जी आदि से अंत तक ईश्वर प्राप्ति हेतु लालायित दिखाई पड़ते हैं। उनकी आत्मा रूपी दुल्हन अपने दूल्हे को पाकर हर्षित हो उठती हैं। अब इनकी आत्मा उस अद्वितीय क्षण की प्रतीक्षा में है जब दूल्हे और दुल्हन का मिलन होगा। इस मिलन से पूर्व जब दूल्हे और दुल्हन के फेरे होते हैं, ऐसी भी कल्पना का

चित्रण करते हुए इन्होंने लिखा हैः–

''फेरों की त्यारी हुई, लगन लगी है आप।
दुल्हन दुल्हा इक्ट्ठे, कोई दीना पटा बिछाय।।''[41]

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण इनके अन्तः साक्ष्य में उपलब्ध हैं, जिन्हें पढ़कर यह कहा जा सकता है कि इनकी साधना का चरमोत्कर्ष ब्रह्ममय हो जाना है। इनके अनेकों पदों को पढ़कर सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन्होंने उस सार तत्व में स्वयं को अन्तर्भूत कर दिया था। इनका कथन हैः–

"बेनामी के ब्याह को, गावै समझ विचार।
आवागमन जिनके नही; कोई मिले सार मे सार"[42]

अपनी साधना के चरमोत्कर्ष लक्ष्य को प्रकट करते हुए बेनामी जी कहते हैंः–

"सैल करे बेनामी बैकुण्ठन, जहाँ पर बजै बहुत से साज।
एक ओर ब्रह्म वेद उचारे एक ओर नारद बजावत साज।।"[43]

9. सन्दर्भ सूचि

1. आचार्य परशुराम चतुर्वेदीः 'उत्तरी भारत की सन्त–परम्परा', पृ. 17
2. बेनामी आत्म बोध, पृ.10
3. बेनामी आत्म–बोध, 'पद' शीर्षक, पृ.118
4. अंत साक्ष्य, पृ0156
5. अंतः साक्ष्य,पृ0156–156
6. अंतः साक्ष्य, पृ.40
7. डॉ. इन्दिरा सिंहः 'कबीर के काव्य का साहित्यिक अनुशीलन', पृ.89
8. बेनामी आत्म–बोध, पृ.38
9. बेनामी आत्म–बोध, 'सिधांतवार्त्ता' शीर्षक, पृ.77
10. बेनामी आत्म–बोध, 'सिधान्तवार्ता',शीर्षक, पृ.72
11. डॉ. इन्दिरा सिंहः 'कबीर के काव्य का साहित्यिक अनुशीलन', पृ.94
12. वही, पृ.94
13. वही, पृ.95
14. वही पृ.95
15. वही पृ.95
16. बेनामी आत्म–बोध, 'बारहखड़ी' शीर्षक, पृ.3
17. बेनामी आत्म–बोध, 'बारहखड़ी' शीर्षक, पृ.94
18. डॉ. इन्दिरा सिंह, 'कबीर के काव्य का साहित्यिक अनुशीलन', पृ.104
19. वही, पृ.104
20. वही, पृ.104
21. वही, पृ.104
22. वही, पृ.104
23. बेनामी आत्म–बोध, 'सिद्धान्तवार्त्ता', शीर्षक, पृ.68
24. बेनामी आत्म–बोध, पृ.138
25. डॉ. इन्दिरा सिंहः 'कबीर के काव्य का साहित्यिक अनुशीलन', पृ.105
26. वही, पृ.105–106
27. बेनामी आत्म–बोध, पृ.154
28. बेनामी आत्म बोध, 'सिधांतवार्ता', शीर्षक, पृ.68
29. वही, पृ.59
30. बेनामी आत्म–बोध, 'सिधांतवार्ता' शीर्षक, पृ.79
31. बेनामी आत्म–बोध, 'मरैठी' शीर्षक, पृ.144
32. वही, 'मरैठी' शीर्षक, पृ.142
33. वही, पृ.142
34. बेनामी आत्म–बोध, सिंधातवार्त्ता' शीर्षक, पृ.70
35. वही, 'सिधांतवार्त्ता', पृ.70
36. वही, पृ.68
37. वही, 'आरती झूलना', शीर्षक, पृ.13
38. बेनामी आत्म–बोध, 'होरी' शीर्षक, पृ.113
39. वही, 'आल्हा', शीर्षक, पृ.103
40. वही, पृ.99
41. बेनामी आत्म–बोध, 'परम हसंन का विवाह' शीर्षक, पृ.92
42. वही, पृ094
43. बेनामी आत्म–बोध, आल्हा' शीर्षक, पृ099